National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(69): 29-33
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

सोनाली कुमारी
संस्कृत विभाग, कला सङ्काय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005

Correspondence:
सोनाली कुमारी
संस्कृत विभाग, कला सङ्काय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005

वैश्विक मूल्य संकट एवं भारतीय समाधान

सोनाली कुमारी

शोधसार

यह शोध-निबंध वर्तमान वैश्विक मूल्य संकट के मूल कारणों का दार्शनिक विश्लेषण करता है, जिसमें भौतिकवाद, उग्र व्यक्तिवाद और प्रकृति से विच्छेद प्रमुख हैं। निबंध तर्क देता है कि आधुनिक सभ्यता में 'अर्थ' और 'काम' को 'धर्म' और 'मोक्ष' से विलग कर दिया गया है, जिससे नैतिक शून्यता और गहन आत्मिक असंतोष उत्पन्न हुआ है। भारतीय दर्शन की 'लोक दृष्टि' इस संकट का एक सर्वांगीण और कालातीत समाधान प्रस्तुत करती है। इस समाधान का आधार वैदिक अवधारणा 'ऋत' (ब्रह्मांडीय व्यवस्था) है, जिसका मानवीय अनुप्रयोग 'धर्म' (धारक शक्ति) है। निबंध का केंद्रीय तर्क यह है कि 'पुरुषार्थ चतुष्टय' (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मानव जीवन के भौतिक (अभ्युदय) और आध्यात्मिक (निःश्रेयस) लक्ष्यों के बीच आवश्यक संतुलन स्थापित करता है। निष्कर्षतः, भारतीय दर्शन का यह एकीकृत ढाँचा केवल जीवन-पद्धति ही नहीं, अपितु एक सुखी, चरित्रवान और स्थिर वैश्विक समाज के नव-निर्माण का मार्ग है।

कूट शब्द: वैश्विक मूल्य संकट, भारतीय दर्शन, पुरुषार्थ चतुष्टय, उपभोक्तावाद, नैतिक शून्यता, कर्म सिद्धान्त

प्रस्तावना :

मानव सभ्यता इतिहास के एक ऐसे निर्णायक मोड़ पर खड़ी है, जहाँ अभूतपूर्व भौतिक प्रगति के साथ-साथ गहन नैतिक और आध्यात्मिक शून्यता का अनुभव किया जा रहा है। विज्ञान और तकनीक ने जहाँ मानव जीवन को अनंत सुविधाएँ दी हैं, वहीं दूसरी ओर उपभोक्तावाद, उग्र व्यक्तिवाद और जलवायु परिवर्तन ने वैश्विक स्तर पर **मूल्य संकट** को जन्म दिया है। यह संकट केवल सामाजिक या आर्थिक नहीं, अपितु मानव-चेतना का मूल संकट है। इसीलिए जब हम "वैश्विक मूल्य संकट" की बात करते हैं, जो वस्तुतः मानवीय चेतना का संकट है, भारतीय दर्शन की उस **'लोक दृष्टि'** के अध्ययन की आवश्यकता को रेखांकित करता है जिसने सहस्राब्दियों तक भारतीय उपमहाद्वीप को नैतिक एवं सांस्कृतिक स्थिरता प्रदान की है। भारतीय दर्शन, जो बौद्धिक ज्ञान कोश मात्र नहीं हैं, अपितु स्वंय में सम्पूर्ण जीवन-पद्धति है, इस वैश्विक भंवर से निकलने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह शोध-पत्र इसी मूल्य संकट के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए, भारतीय दर्शन में निहित समाधानों—विशेषकर ऋत, धर्म, और पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा- को आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है। भारतीय दर्शन की यह 'लोक दृष्टि' न केवल लौकिक (ऐहिक) समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है, अपितु पारलौकिक (आध्यात्मिक) अभ्युदय का मार्ग भी प्रशस्त करती है, जिससे जीवन की सोद्देश्यता सिद्ध होती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्य की दार्शनिक अवधारणा :

वर्तमान मूल्य संकट का मूल कारण 'सत्य' और 'श्रेय' के प्रति पश्चिमी आधुनिकतावादी का दृष्टिकोण है।

पाश्चात्य दर्शन इंद्रियगम्य और भौतिक जगत को ही सत्य मानता है, जिसके कारण जीवन से उसके आध्यात्मिक एवं पारलौकिक आयाम विलुप्त हो गए हैं । भारतीय दर्शन में, दुःखत्रय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःख) से निवृत्ति को जीवन का परम साध्य माना गया है-

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघाते हेतौ ।
दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ।।[1]

किंतु आधुनिकता ने इस परम साध्य को विस्मृत कर दिया है, जिससे जीवन में गहन असंतोष और नियंत्रण का अभाव उत्पन्न हुआ है । भारतीय दर्शन परम्परा में मूल्य व्यवहार नहीं अपितु चेतना की अवस्था मानी गई है । पाश्चात्य आधुनिकता मूल्य को सामाजिक अनुबन्ध का परिणाम मानती है । इसके विपरीत भारतीय दर्शन मनुष्य को ब्रह्म का अंश मानकर मूल्य को अनश्वर, सार्वभौमिक और आत्म-सिद्ध तत्त्व के रूप में स्वीकार करता है । भारतीय परम्परा में मूल्य शक्ति केन्द्रित न होकर संतुलन आधारित हैं । श्रीमद्भगवद्गीता का कथन है- **समत्वं योग उच्यते ।**[2] अर्थात् समभाव को ही योग कहा जाता है।

वैश्विक मूल्य संकट की प्रकृति और उत्पत्ति : एक विश्लेषण

उपभोक्तावादी आधुनिकता: आधुनिक सभ्यता ने 'अर्थ' और 'काम' को 'धर्म' से विलग कर दिया है । भौतिक सुख ही परम साध्य बन गया है, और 'मोक्ष' की अवधारणा या तो अप्रासंगिक हो गई है या भुला दी गई है । यह स्थिति भारतीय दर्शन में वर्णित 'प्रमाद' (अनात्म-ज्ञान के कारण कर्तव्य-विमुखता) और 'मोह' (अज्ञानवश आसक्ति) की दार्शनिक त्रुटि को दर्शाती है । मनुष्य स्वयं को नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा न मानकर, क्षणिक देह या मन मान बैठता है, जिसके परिणामस्वरूप वह 'अकेला', 'अस्थिर', 'प्रवाहहीन' और अपूर्ण महसूस करता है । उग्र व्यक्तिवाद ने 'समष्टि' के प्रति जिम्मेदारी को समाप्त कर दिया है । जहाँ भारतीय संस्कृति में **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** की भावना रही है, वहीं आधुनिक समाज 'स्वार्थ' केंद्रित हो गया है । इससे समाज में सहयोग, सद्भाव और संगठन जैसे मूल्य टूट रहे हैं और सामाजिक न्याय एवं सामंजस्य का संकट गहरा होता जा रहा है । इक्कीसवीं सदी में मानव जीवन बाजार केन्द्रित होता जा रहा है जिसमें मनुष्य वस्तु से नहीं अपितु स्वंय वस्तु सदृश हो गया है किन्तु भारतीय चिन्तन परम्परा में इन्द्रियनिग्रह की प्रेरणा दी गई है । कठोपनिषद् का कथन है – **श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्प्रीत्य विविनक्ति धीरः।**[3] अर्थात् मनुष्य के सम्मुख श्रेय (दीर्घकल्याण) और प्रेय (तात्कालिक) दोनों ही प्रकार के मार्ग उपस्थित हैं ।

नैतिक शून्यता और प्रकृति विमुखता: आधुनिक सन्दर्भ में पृथ्वी को संसाधन मानकर उसका अंध-शोषण किया जा रहा है जिससे जलवायु परिवर्तन, वनों का विनाश, कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि, जैव विविधता का क्षरण, एवं सूखा-बाढ़ जैसी आपदाएं अनियंत्रित रूप से बढ़ रही हैं । भारतीय चिन्तन परम्परा में वेदों में प्रकृति को मातृ स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है । अथर्ववेद में कहा गया है – **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।**[4] पर्यावरण संकट वस्तुतः मानव और प्रकृति के बीच के संबंध में नैतिक मूल्यों के क्षरण का परिणाम है । मानव ने प्रकृति को भोग की वस्तु मान लिया है। यह दृष्टिकोण भारतीय दर्शन के मूल में निहित 'अपरिग्रह' (आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना) के सिद्धांत के विपरीत है ।

ईशावास्योपनिषद् का कथन **-**

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।[5]

अर्थात् इस जगत में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है । उसका त्यागपूर्वक भोग करो, किसी के धन की लालसा मत करो । यह मन्त्र भोग और त्याग के बीच संतुलन स्थापित करता है । यह सिखाता है कि प्रकृति के संसाधनों का उपयोग आवश्यकतानुसार हो, न कि लालचवश, क्योंकि प्रकृति का कोई भी धन व्यक्तिगत नहीं है । जब तक मनुष्य स्वयं को समष्टि का अविभाज्य अंग नहीं मानता और प्रकृति का आदर नहीं करता, तब तक पर्यावरण का धारण (संवर्धन) संभव नहीं है ।

मूल्य का विघटन और कर्म-सिद्धान्त का लोप

संकट का सबसे बड़ा लक्षण 'धर्म' (नैतिक कर्तव्य) का लोप होना है । शासकों में इंद्रिय-संयम का अभाव है, न्याय, ईमानदारी और निष्पक्षता का लोप हो गया है । लोक-लज्जा, पाप और परमेश्वर का भय समाप्त होने से यथेच्छाचार बढ़ गया है । परिवार, जो मूल्य-संचरण का प्राथमिक विद्यालय था, आज विखण्डित होता जा रहा है । सम्पर्क बढ़ा है किन्तु संबंध शुष्क होते जा रहे हैं । मनोरंजन के साधन अधिक उपलब्ध हो गए हैं, किन्तु मानसिक सुख शान्ति का अभाव होता जा रहा है । मनुस्मृति में कहा गया है –

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोवधीत् ।।[6]

कर्म-सिद्धान्त: भारतीय दर्शन की यह आधारशिला है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगता है । यह सिद्धांत मनुष्य को अपने वर्तमान जीवन में शुभ-कर्मों के लिए प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देता है । मूल्यों के संकट में कर्म-सिद्धान्त के प्रति अनास्था आ गई है, जिससे मनुष्य क्षणिक लाभ के लिए अधर्म में प्रवृत्त हो रहा है । यह स्पष्ट करता है कि जीवन के दुःखों का मूल कारण आध्यात्मिक असंतोष, आत्म-नियंत्रण का अभाव, और कर्मफल के प्रति अविश्वास है ।

भारतीय दर्शन के समाधान

भारतीय दर्शन की 'लोक दृष्टि' विशुद्ध रूप से उदारवादी, समाजीकरण-केंद्रित और आध्यात्मिक है। यह दृष्टि एक ऐसे विश्व की कल्पना करती है जो **सत्यम्, शिवम् और सुंदरम्** के मूल्यों पर टिका हो, और जिसका मूल आधार 'समष्टि कल्याण' है।

ऋत की अवधारणा: सृष्टि का आद्य नियम

भारतीय मूल्य मीमांसा का आदिम आधार **'ऋत'** है, जो वैदिक काल (विशेषकर ऋग्वेद) से ही ब्रह्मांडीय, नैतिक और ऋतुगत व्यवस्था को नियंत्रित करने वाला मौलिक नियम है। ऋत 'धर्म' की अपेक्षा अधिक व्यापक है । यह सूर्य, चंद्रमा और ऋतुओं की नियमित गति (ब्रह्मांडीय व्यवस्था) को नियंत्रित करता है । यह सामाजिक और नैतिक जीवन में सत्य, निष्ठा और न्याय (नैतिक व्यवस्था) का नियामक है । ऋत की अवहेलना ही अनैतिकता या अधर्म को जन्म देती है ।यह मानता है कि मानव का व्यक्तिगत आचरण (धर्म) तभी सही हो सकता है जब वह ब्रह्मांड की सार्वभौमिक व्यवस्था (ऋत) के अनुरूप हो । ऋत, एक प्रकार से ब्रह्मांडीय मौलिकता है, जिसके पालन से विश्व में संतुलन और स्थायित्व बना रहता है।

धर्म की व्यापकता और 'धारक शक्ति'

भारतीय चिंतन में धर्म केवल 'रिलीजन' नहीं है, बल्कि वह 'धारक शक्ति' है जो व्यक्ति, समाज और विश्व को धारण करती है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'धारण करना' । धर्म, ऋत का मानवीय या सामाजिक अनुप्रयोग है।

सामान्य धर्म (सार्वभौमिक मूल्य): ये वे शाश्वत मूल्य हैं, जो देश, काल और परिस्थिति से परे सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से आवश्यक हैं- जसे अहिंसा (मनसा, वाचा, कर्मणा), सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (संयम) और अपरिग्रह । महर्षि मनु के अनुसार, क्षमा, दम (आत्म-नियंत्रण), अस्तेय, शौच (शुद्धता) और इंद्रिय निग्रह सामान्य धर्म के अंग हैं।

स्वधर्म (व्यक्तिगत कर्तव्य): व्यक्ति का अपने वर्णाश्रम, स्थिति और कर्तव्य के अनुरूप आचरण (यथा राजधर्म, प्रजाधर्म, मातृधर्म, पुत्रधर्म)।

धर्म ही वह नैतिक बंधन है जो व्यक्ति को 'समष्टि' (समाज) से जोड़ता है । जब व्यक्ति अपने स्वधर्म का पालन करता है, तो समाज में सुव्यवस्था, शांति और समृद्धि स्वतः स्थापित होती है । मूल्य संकट का मूल कारण इसी धर्म के व्यापक स्वरूप को संकुचित करके केवल पूजा-पद्धति तक सीमित कर देना है।

गीता का कर्मयोग और समत्व-नैतिकता

भगवद्गीता का 'लोक-संग्रह' सिद्धांत एवं निष्काम कर्म सिद्धांत आधुनिक वैश्विक व्यवस्था के लिए सबसे व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करती है । यह सिद्धांत कर्म के नितान्त व्यक्तिगत फल पर ध्यान केंद्रित न करके, **कर्म के सामाजिक दायित्व** पर बल देता है । इस सन्दर्भ में भगवद्गीता का प्रसिद्ध श्लोक उद्धृत है -

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि ॥[7]

अर्थ- जनकादि महापुरुषों ने भी आसक्ति रहित कर्म से ही परमसिद्धि प्राप्त की है, इसलिए तुम्हें भी लोक-संग्रह को देखते हुए ही कर्म करना चाहिए । यह सिद्धांत यह निर्दिष्ट करता है कि ज्ञानी और नेतृत्वकर्ता का कर्तव्य है कि वह आसक्ति रहित होकर कर्म करे और अपने कर्मों से लोक के लिए आदर्श स्थापित करे, जिससे कि लोक-व्यवस्था कायम रहे । आधुनिक नेता, प्रशासक और व्यवसायी यदि केवल अपने स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि लोक-संग्रह के लिए कार्य करें, तो न्याय और ईमानदारी स्वतः वापस आ सकती है । यह सिद्धांत **निःस्वार्थ कर्म (निष्काम कर्म)** को वैश्विक कल्याण का आधार बनाता है।

पुरुषार्थ चतुष्टय: जीवन की सर्वांगीण अभिवृद्धि और संतुलन

भारतीय मूल्य मीमांसा का व्यावहारिक दर्शन **पुरुषार्थ चतुष्टय**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—में निहित है । यह सिद्धांत आधुनिक मूल्य संकट का सबसे बड़ा निवारण है, क्योंकि यह जीवन के भौतिक (ऐहिक) और आध्यात्मिक (पारलौकिक) दोनों लक्ष्यों को समन्वित करता है।

त्रिवर्ग और मोक्ष का समन्वय

पुरुषार्थ चतुष्टय की महत्ता इस बात में है कि यह भौतिक जीवन के लक्ष्यों (अर्थ और काम) को आध्यात्मिक आधार (धर्म और मोक्ष) प्रदान करता है।

- **त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम):** यह लौकिक उन्नति का मार्ग है । धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों ही पुरुषार्थ परस्पर संश्लिष्ट हैं । अर्थ और काम जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, किंतु उन्हें धर्म की सीमा में बाँधना आवश्यक है । धर्म वह नियामक शक्ति है जो अर्थ और काम के उपभोग को नियंत्रित करती है, जिससे वे भोग न होकर 'योग' बन जाते हैं। कृष्ण कहते हैं- **धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ** [8] अर्थात् सभी प्राणियों में धर्मानुकूल जो काम है, वह मैं हूँ।
- **मोक्ष: परम पुरुषार्थ:** मोक्ष (परम स्वतंत्रता, आत्म-ज्ञान, या दुःखों से निवृत्ति) परम साध्य और चरम लक्ष्य है । यह चिरंतन आनंद (सच्चिदानंद) की प्राप्ति है । मोक्ष को प्राप्त करने के लिए त्रिवर्ग की सम्यक् सिद्धि आवश्यक है, क्योंकि अर्थ और काम से विमुख व्यक्ति मोक्ष के लिए एकाग्र नहीं हो सकता।

आज के वैश्विक संकट में, अर्थ और काम की प्रधानता है, जबकि धर्म और मोक्ष गौण हो गए हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय का संदेश है: **भौतिक और**

आध्यात्मिक लक्ष्यों के बीच संतुलन स्थापित करना ही सुगठित व्यक्तित्व और समाज का निर्माण करता है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र: धर्म द्वारा अर्थ का नियमन

वर्तमान वैश्विक आर्थिक संकट और भ्रष्टाचार का सीधा संबंध 'अर्थ' को 'धर्म' से पृथक करने से है। इस संदर्भ में, कौटिल्य का **अर्थशास्त्र** एक अमूल्य भारतीय समाधान प्रस्तुत करता है।

- **अर्थशास्त्र में धर्म का स्थान:** कौटिल्य अर्थ (धन, भूमि, राज्य) को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि अर्थ के बिना धर्म और काम की सिद्धि संभव नहीं है इस सन्दर्भ में यह कथन प्रसिद्ध है – **"अर्थस्य मूलो धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः"** - हालांकि यह लोकप्रिय उद्धरण कौटिल्य के नाम से प्रचलित नहीं है, इसका सार अर्थशास्त्र में निहित है।
- **दण्ड और न्याय:** कौटिल्य दण्ड (न्याय व्यवस्था) को धर्म को स्थापित करने का साधन मानते हैं। शासक का कर्तव्य है कि वह अधर्म करने वाले (भ्रष्टाचार, कर चोरी, धोखाधड़ी) को दण्ड दे, जिससे अर्थ-शुचिता बनी रहे। दण्ड का भय ही समाज में नैतिकता का पालन सुनिश्चित करता है।
- **राजा का कर्तव्य (राजधर्म):** कौटिल्य का राजधर्म सिद्धांत बताता है कि राजा का व्यक्तिगत सुख प्रजा के सुख में निहित है **– प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्**।[9] यह सिद्धांत आधुनिक कॉर्पोरेट गवर्नेंस और राजनीतिक नेतृत्व के लिए एक आदर्श है, जहाँ लाभ-उन्मुखता की जगह लोक-कल्याण-उन्मुखता को केंद्र में रखा जाना चाहिए।
- **त्रिवर्ग का सम्यक् सेवन:** कौटिल्य, अर्थशास्त्र में राजा को सलाह देते हैं कि वह धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से सेवन करे, किसी एक की अति न करे। यह संतुलन ही राजव्यवस्था में दीर्घकालिक स्थिरता ला सकता है।

भारतीय समाधान के व्यावहारिक आयाम

भारतीय दर्शन केवल सैद्धांतिक नहीं है, यह जीवन की समस्याओं को सुलझाने और दुःखों से निवृत्त होने का व्यावहारिक साधन है। इसके समाधान को आधुनिक जीवन के सभी क्षेत्र में लागू किया जा सकता है।

एकात्म मानववाद और सर्वोदय की वैश्विक प्रासंगिकता

दीनदयाल उपाध्याय के **एकात्म मानववाद** की अवधारणा मूल्य संकट के समाधान के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। यह मानता है कि व्यक्ति, समाज, प्रकृति और आत्मा—ये चारों एक ही कड़ी के हिस्से हैं। यह समष्टि की चेतना को केंद्र में रखता है।

- **'यज्ञ' की भावना:** भारतीय दर्शन में 'यज्ञ' केवल अनुष्ठान नहीं, बल्कि समाज के प्रति कर्तव्य का निर्वहन है। एकात्म मानववाद इसी 'यज्ञ' की भावना को आधुनिक जीवन में उतारता है, जहाँ व्यक्ति का कल्याण (स्वार्थ) तभी संभव है जब वह समाज और प्रकृति के कल्याण (परमार्थ) से जुड़ा हो।
- **सर्वोदय (सभी का उदय):** महात्मा गांधी और विनोबा भावे द्वारा प्रचारित सर्वोदय का विचार वंचितों और हाशिए पर रह रहे विकासशील राष्ट्रों के विकास को समाहित करता है। यह मानवतावादी दृष्टिकोण वैश्विक विषमता, अन्याय और उत्तर-दक्षिण विभाजन के संकट को दूर करने का एकमात्र स्थायी उपाय है।
- **शिक्षा में मूल्यों का समावेश (आत्म-नियंत्रण और संस्कार):** वर्तमान शिक्षा पद्धति केवल रोजगारोन्मुख है, न कि चरित्र-निर्माणोन्मुख। भारतीय दर्शन कहता है कि शिक्षा का उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा तीनों का विकास है।
- **गुरु-शिष्य परम्परा और आत्म-नियंत्रण:** भारतीय शिक्षा पद्धति का सार यह है कि व्यक्ति के आचरण को नियंत्रित करने के लिए **आत्म-नियंत्रण** को केंद्र में रखा जाए। उपनिषदों में दान, दया और दम (आत्म-नियंत्रण) को मानव जीवन के तीन आवश्यक गुण बताए गए हैं। आत्म-नियंत्रण के अभाव में चंचल मन व्यक्ति को बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है।
- **संस्कार:** शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति में सद्गुणों (जैसे विनम्रता, सत्यनिष्ठा, सेवाभाव) का रोपण करना है। भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कार व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के नैतिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित करते हैं। आधुनिक शिक्षा में योग, अध्यात्म और नैतिक कहानियों को अनिवार्य करके चरित्रवान नागरिकों का निर्माण किया जा सकता है।

वसुधैव कुटुम्बकम् और वैश्विक नैतिकता: अद्वैत का दर्शन

उपनिषदों से निकला यह सिद्धांत **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** (संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार है) अद्वैत वेदांत पर आधारित है।

अद्वैत का आधार: यह सिद्धांत मानता है कि चूंकि आत्मा एक है और सभी में वही ब्रह्म तत्व विद्यमान है, इसलिए दूसरे राष्ट्र, दूसरे धर्म या दूसरी प्रजाति के प्रति द्वेष या संघर्ष का कोई आधार नहीं बचता।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥[10]

अर्थात् यह मेरा है यह पराया, ऐसी गणना छोटे मन वाले करते हैं। उदार चरित्र वालों के लिए तो संपूर्ण पृथ्वी ही परिवार है।

वैश्विक शांति और अहिंसा: भारतीय चिंतन की अहिंसा और करुणा की भावना इसी अद्वैत भाव से उत्पन्न होती है, जो वैश्विक शांति, स्थिरता और स्थायित्व के लिए परम आवश्यक है। **'अहिंसा परमो धर्मः'** का सिद्धांत वैश्विक राजनीति में लागू होने पर युद्ध, आतंकवाद और नस्लीय भेद-भाव जैसी समस्याओं का अंत हो सकता है।

निष्कर्ष:

वैश्विक मूल्य संकट आधुनिकता की अपूर्णता और एकांगी दृष्टि का परिणाम है । इस संकट का समाधान किसी बाह्य शक्ति या त्वरित आर्थिक पैकेज में नहीं, बल्कि मानव की चेतना के आंतरिक शुद्धीकरण और 'श्रेय' के मार्ग पर पुनर्स्थापना में निहित है।

भारतीय दर्शन की 'लोक दृष्टि', जो ऋत से धर्म, धर्म से पुरुषार्थ, और पुरुषार्थ से मोक्ष तक की यात्रा तय करती है, जीवन की सोद्देश्यता को सिद्ध करती है। धर्म द्वारा नियंत्रित अर्थ (जैसा कि कौटिल्य ने सुझाया), समाज द्वारा प्रेरित काम, और मोक्ष द्वारा निर्देशित जीवन—यही वह **सर्वांगीण जीवन-पद्धति** है जो आधुनिक संकट का स्थाई निवारण प्रस्तुत करती है । इस कालजयी दार्शनिक निधि को पुनः प्रतिष्ठित करके ही हम विश्व कल्याण (लोक-संग्रह) को सुनिश्चित कर सकते हैं । भारत को केवल वैश्विक ढाँचों का अनुकरण करने के बजाय, अपने विश्व दृष्टिकोण से तैयार विकास मॉडल और नैतिक दर्शन को विश्व के समक्ष एक व्यावहारिक समाधान के रूप में प्रस्तुत करना होगा, जहाँ भौतिक समृद्धि (अर्थ और काम) और नैतिक दायित्व (धर्म और मोक्ष) का सुंदर समन्वय हो और यह समन्वय ही एक **सुखी, चरित्रवान और समृद्ध** विश्व का निर्माण कर सकता है ।

सन्दर्भ :

1. सांख्यकारिका – १/१
2. भगवद्गीता – २/४८
3. कठोपनिषद् – १/२/१
4. अथर्ववेद – १२/१/१२
5. ईशोपनिषद् – १
6. मनुस्मृति – ८/१५
7. भगवद्गीता – ३/२०
8. वहीं -७/११
9. अर्थशास्त्र – १/१९
10. हितोपदेश

संदर्भ ग्रन्थसूची :

1. अर्थशास्त्र, व्याख्याकार-टी.गणपति शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, वर्ष-2018
2. ईशादि नौ उपनिषद, गीताप्रेस गोरखपुर, चालीसवां पुनर्मुद्रण
3. मनुस्मृति, व्याख्याकार प. हरगोविन्दशास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, वर्ष-2021
4. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, सैतालीसवां पुनर्मुद्रण
5. भारतीय मूल्य व्यवस्था- देव , पद्माकर
6. भारतीय समाज: संरचना और परिवर्तन- हरिशंकर चतुर्वेदी
7. भारतीय संस्कृति एंव चिंतन – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
8. International Journal of Ethics – वैश्विक नैतिक संकट पर शोध लेख
9. Journal of World Philosophy – तुलनात्मक दर्शन सम्बन्धी लेख
10. हितोपदेश, सम्पादक प्रो. बालशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण वर्ष 2023